जीव (आत्मा)

जैन दर्शन में चेतन द्रव्य को ही जीव या आत्मा कहते हैं। 'षड्दर्शन-समुच्चय' (गुणरत्न) में इसकी परिभाषा देते हुए कहा गया है- "चैतनालक्षणो जीव:"। जीव स्वतंत्र अस्तित्ववाला द्रव्य है। अपने अस्तित्व के लिए यह न तो किसी दूसरे द्रव्य पर आश्रित है और न इस पर आश्रित कोई दूसरा द्रव्य है। सब द्रव्यों में जीव (आत्मा) ही श्रेष्ठ द्रव्य है, क्योंकि केवल जीव को ही हित - अहित, हेय - उपादेय, सुख - दुःख आदि का ज्ञान होता है। अन्य अजीव द्रव्यों (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) में इसका अभाव होता है। द्रव्य की सामान्य परिभाषा के अनुसार आत्मा (जीव) परिणामी-नित्य है। द्रव्य गुण अपेक्षा से आत्मा नित्य है किंतु पर्याय अपेक्षा से परिणामी है।

जीव एक नहीं अनेक अर्थात् अनन्त माने गये हैं। जीव का लक्षण चैतन्यता है। यह चैतन्य ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक रूप से प्रकट होता है। अत: हम कह सकते हैं कि, जहाँ चैतन्य है वहाँ ज्ञान है, भाव है और क्रिया है। ज्ञान या चेतना आत्मा का आगन्तुक धर्म नहीं बल्कि स्वाभाविक धर्म है। जीव ज्ञाता होने के साथ-साथ कर्ता और भोक्ता भी है। जीव संसारिक अवस्था में अपने शुभ - अशुभ, पाप-पुण्य कर्मों का कर्ता-धर्ता है और उनके फलस्वरूप उत्पन्न सुख-दुःख का भोक्ता भी है। मुक्त अवस्था में आत्मा (जीव) अनन्त ज्ञान का स्वामी होता है। शुभ-अशुभ से परे राग-द्वेष रहित क्रियाओं का कर्ता होता है और अनन्त आनन्द का भोक्ता होता है।

जीव स्वयं प्रकाशमान है तथा अन्य वस्तुओं को भी प्रकाशित करता है। जीव नित्य है। किंतु इसकी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। संसारी जीव अनादिकाल से ही कर्मों से बद्ध है, जिस कारण वह जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। संचित कर्मों के कारण

जन्म - पुनर्जन्म के चक्र में पड़ने से उसे अनेक शरीर धारण करना पड़ता है। जिस प्रकार कोई दीपक अपने चारों ओर प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार जीव भी संपूर्ण शरीर को प्रकाशित करता है। जीव की कोई मूर्ति नहीं होती। किंतु जिस प्रकार प्रकाश स्थानानुसार आकार एवं रूप धारण करता है, उसी प्रकार जीव का विस्तार भी शरीर के अनुसार होता है। जीव को प्रभु (अपने विकास में समर्थ) कहा गया है। वह स्वयं अपना शत्रु है और वही अपना मित्र। अर्थात् जीव स्वयं ही अपने उत्थान एवं पतन का कारण है अथवा उत्तरदायी है।

इस प्रकार से 'उत्तराध्ययन' के सूत्र 'जीवो उवओगलक्खणो' द्वारा जीव का लक्षण उपयोग है। अर्थात् जिसमें उपयोग है वह जीव है। यहाँ पर उपयोग का आशय चेतना से है। इस उपयोग (चेतना) के भी दो भेद हैं -

(1). सकारोपयोग - यह ज्ञान का क्षेत्र है और,

(2). निराकारोपयोग - यह दर्शन का क्षेत्र है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि जिसमें ज्ञान और दर्शन दोनों के उपयोग विद्यमान हों - वह जीव है तथा वह सुख-दु:खानुभूतियुक्त है। 'पंचास्तिकाय' में कहा गया है कि - जो चार प्राणों (इन्द्रियाँ, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास) से जीता है, जीयेगा और पहले भी जीता था, वह जीव है। -

"पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हि जीविदो पुव्वं"।

जीवों का वर्गीकरण

जैन दर्शन में जीवों का वर्गीकरण दो दृष्टिकोण से किया गया है -

(1). सांसारिक और आध्यात्मिक।

(2). संसारी जीव (बद्ध जीव) और मुक्त जीव।

① प्रथमानुसार जीवों के वर्गीकरण को हम निम्नवत् प्रकार से समझ सकते है। जैसे —

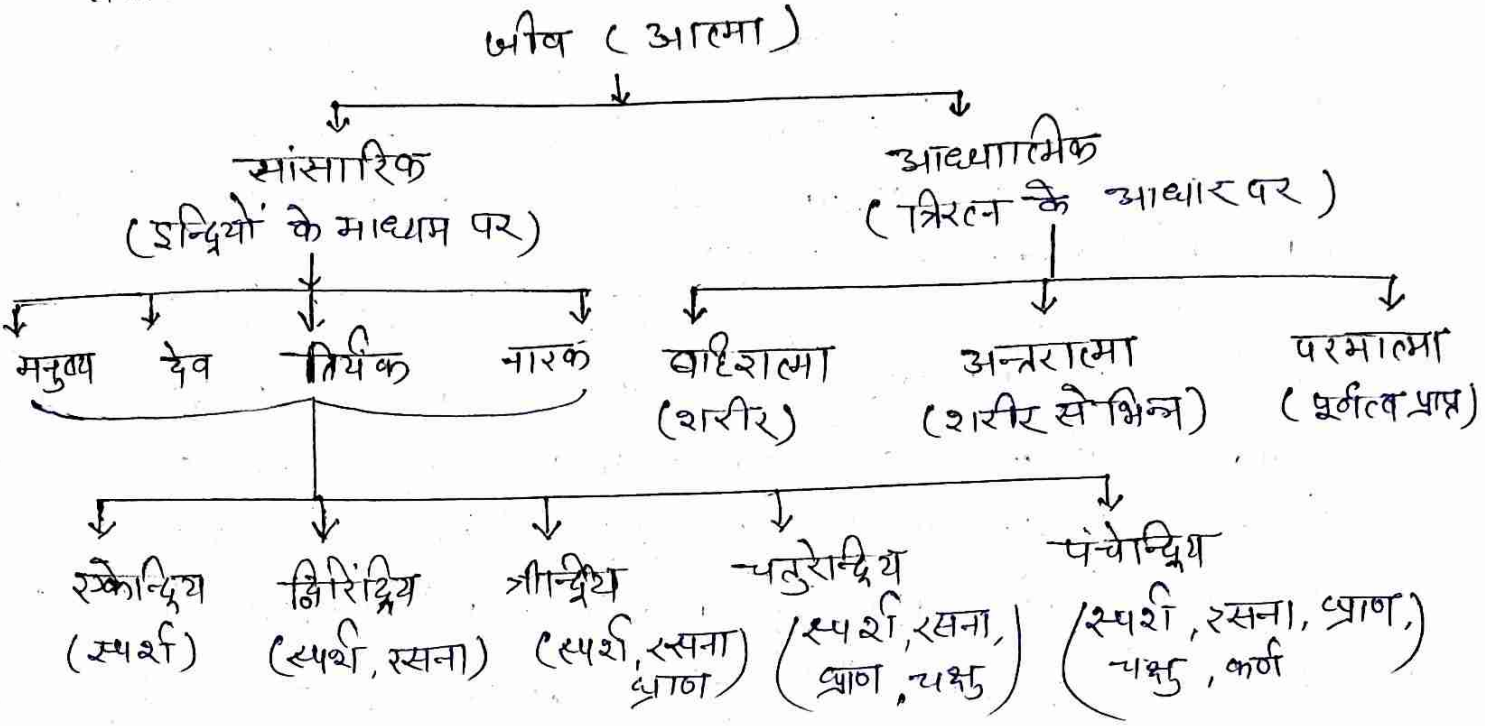

② दूसरे वर्गीकरण के आधार पर जीव दो प्रकार के होते हैं। जिनका महत्व हम अपने जीवन में पाते है। इसको हम निम्नवत् रूप में संक्षेपत: समझ सकते हैं। यथा —

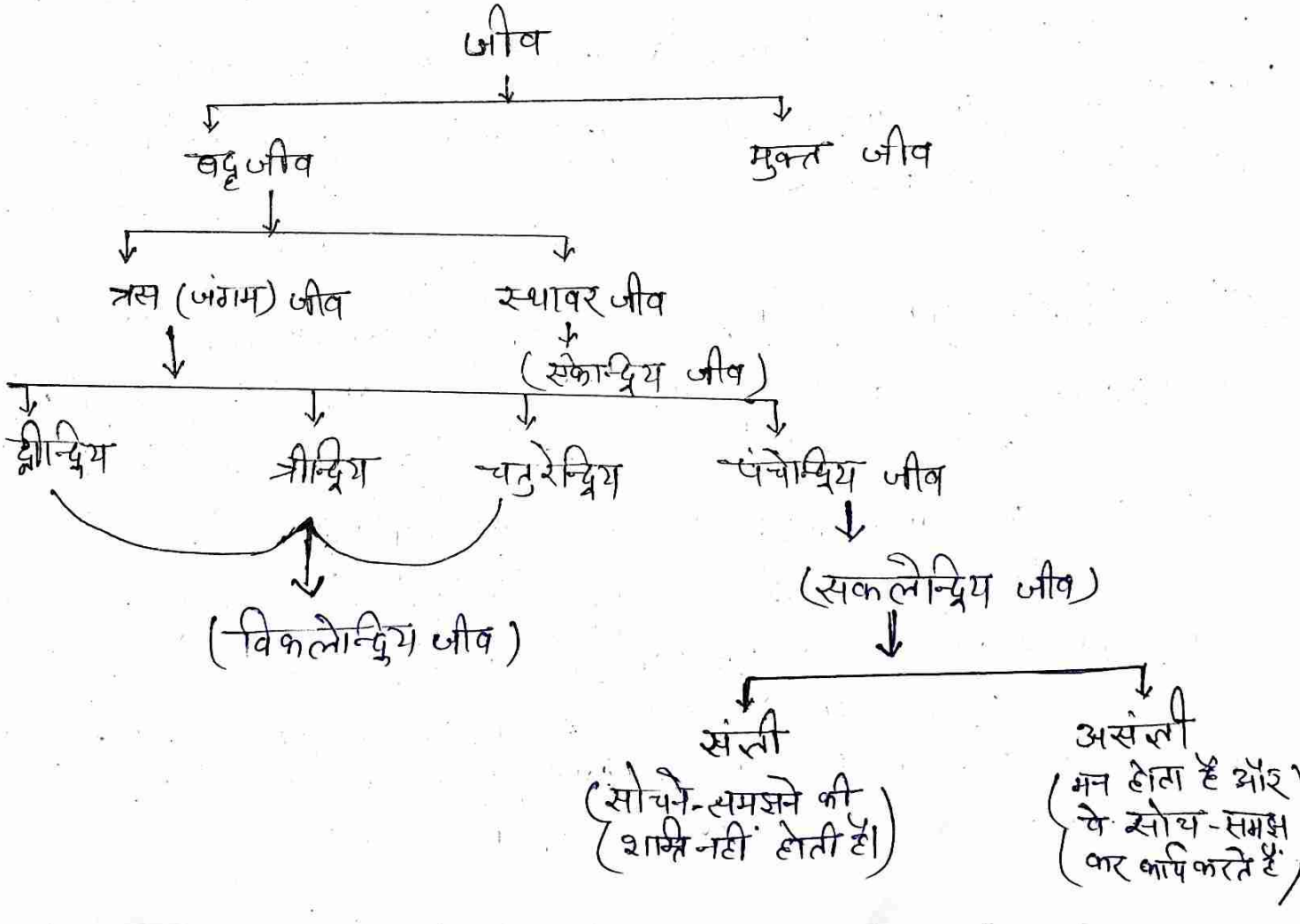

(क) बद्ध जीव → इन्हें संसारी जीव भी कहते हैं। कर्मबन्धन से बंधे एक गति से दूसरे गति (योनि) में जन्म-मरण के चक्कर में पड़ने के कारण ये संसारी जीव कहलाते हैं। बद्ध जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख, बल आदि गुणों पर कर्म का आवरण चढ़ा हुआ है जिससे वे मुक्त नहीं हो पाते। अतः बद्ध जीव कर्मबंधनयुक्त होते हैं। संसारी जीव के मूलतः दो भेद होते हैं — त्रस और स्थावर।

त्रस → त्रस (जंगम) वे जीव हैं जो हिलने में चलने-फिरने की योग्यता रखते हैं तथा जो अपनी रक्षा के लिए धूप से छाया, अर्थात् सुरक्षित स्थान पे जा सकते हैं। इनके भी चार भेद होते हैं — द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। ये चारों विकलेन्द्रिय कहलाते हैं। पंचेन्द्रिय के भी दो भेद होते हैं — संज्ञी और असंज्ञी।

स्थावर जीव → जो जीव चलना-फिरना नहीं कर सकते और अपनी ही पर्यायों में एक ही जगह स्थित रहते हैं, उन्हें स्थावर कहते हैं। स्थावर जीव में केवल एक ही इन्द्रिय होती है - स्पर्श। इन जीवों के पास स्पर्श के माध्यम से ही अनुभव की क्षमता होती है। ऐसे जीव (एकेन्द्रिय) 5 प्रकार के होते हैं —
① पृथ्वीकाय, ② अपकाय (पानी), ③ तेजकाय (आग), ④ वायुकाय
⑤ वनस्पतिकाय।

⇒ त्रस के अंतर्गत आने वाले चार प्रकार के जीवों का वर्णन निम्नवत् है —
ⓐ द्वीन्द्रिय → इन जीवों में दो इन्द्रियाँ होती हैं — स्पर्श और रसना (जिह्वा)
इसके उदाहरण हैं — लट, शंख, जोंक, केंचुआ आदि।
ⓑ त्रीन्द्रिय → इनमें तीन इन्द्रियाँ होती हैं — स्पर्श, रसना और घ्राण।
जैसे - चींटी, जूँ, कनखजूरा आदि।
ⓒ चतुरेन्द्रिय → स्पर्श, रसना, घ्राण (सूंघना) और चक्षु (आँख) ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। जैसे - मक्खी, मच्छर, भौंरा आदि।
ⓓ पंचेन्द्रिय → इनमें पाँच होती हैं - स्पर्श, रसना, घ्राण, कर्ण, चक्षु।
जैसे - मनुष्य, पशु, पक्षी आदि।